BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed Open Access Journal
issn : 3048-6971
Vol. 2, Issue 4, October-December 2024
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का संकल्पनात्मक रूपरेखा

सैयद इमरान वारसी
शोधार्थी
लोक प्रशासन विभाग
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
रजिस्ट्रेशन संख्या –XM/R/403/22

वर्तमान काल में मानव के समक्ष सर्वाधिक जवलन्त समस्या आर्थिक एवं प्रादेशिक विकास को गति प्रदान करने की है। विकसित देषों की अपेक्षा विकासशील देशों में यह समस्या और भी गम्भीर है। इन देशों के पास संसाधनों के विकास के लिए पूंजी एवं आधुनिक तकनीकी ज्ञान सीमित हैं। इनकी कमी के कारण विकासशील देश अपने संसाधनों का समुचित उपयोग व विकास नहीं कर पा रहे हैं। फलस्वरूप उनके पास समस्याओं का अम्बार है। ये देश इन समस्याओं से निजात पाने एवं समय से प्रादेशिक विकास करने के लिए प्रयत्नशील हैं। प्रदेशिक विकास के विभिन्न उपागमों में वृद्धि विकास केन्द्र एवं सेवा केन्द्रों की संकल्पना को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया जा रहा है। क्योंकि विभिन्न देश में अध्ययनों एवं प्रयोगों के आधार पर इनकी सार्थकता आर्थिक एवं प्रादेशिक विकास में प्रमाणित हो चुकी है।

किसी भी भौगोलिक क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक संसाधनों के क्षेत्रीय वितरण में संकेन्द्रण की प्रवृत्ति पायी जाती है। परिणामस्वरूप मानव व प्राकृतिक संसाधनों के अन्तर्क्रियात्मक प्रक्रिया से विकसित मानवीय आर्थिक संगठन नीति संकेन्द्रण की प्रवृत्ति लिये रहती हैं, इसीलिए मानवीय कार्यों की भौगोलिक अवस्थिति क्षेत्रीय न होकर बिन्दुवत रहती है। इसी आधार पर मानव अधिवासों का विकास भी धरातल पर केन्द्रवत होता है। अधिवासों के वितरण तन्त्र में कुछ अधिवासों की तुलनात्मक रुप में केन्द्रीय अवस्थिति विभिन्न प्रकार की मानवीय आवश्यकताओं का परिणाम होती हैं। किसी भी क्षेत्र में इस प्रकार के अधिवासों का वितरण कुछ निश्चित दूरी अन्तराल पर मिलता है, ऐसे ही मानवीय अधिवास मानव की सामाजिक–आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करते हैं।

कालान्तर में इसी प्रकार के मानवीय अधिवासों का एक वृहद वितरण तन्त्र विकसित हो जाता है, जिसमें विभिन्न अधिवासों का पदानुक्रमिक स्वरूप अस्तित्व में आता है। इसी प्रक्रिया से आगे चलकर सभी दो छोटे–बड़े अधिवास वितरण तन्त्र का एक प्रमुख अंग बन जाते हैं। यह अधिवास अपने विकास क्रम के आधार पर केन्द्रीय ग्राम, सेवा बिन्दु, सेवा केन्द्र, केन्द्रस्थल अथवा नगर केन्द्र के रूप में अस्तित्व में आ जाते हैं (मिश्रा,1983)।

लघुस्तर पर विभिन्न प्रकार के सामाजिक–आर्थिक अवस्थापनात्मक तत्व जो विकास प्रक्रिया के वाहक होते हैं, इन्हीं केन्द्रों पर स्थित होते हैं। क्षेत्र के सर्वांगीण विकास के लिए इन अवस्थापनात्मक तत्वों तक सम्पूर्ण जनसंख्या की पहुंच आवश्यक है। यही कारण है कि समन्वित ग्रामीण विकास नियोजन में विभिन्न अन्तरवर्ती केन्द्रों की स्थापना करके सेवाओं एवं सुविधाओं का पुर्नगठन करके कार्यात्मक समन्वयन को विकसित किया जा सकता हैं, जिससे क्षेत्र में संतुलित विकास प्रक्रिया प्रारम्भ हो सकती है। सेवा केन्द्रों के माध्यम से क्षेत्र में ग्रामीण विकास करके संतुलित विकास का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है, (पाण्डेय,1985)।

केन्द्रस्थल–केन्द्रस्थल ऐसे स्थाई मानव अधिवास होते हैं, जो अपने चतुर्दिक फैले क्षेत्रों की जनसंख्या को वस्तु विनिमय एवं विविध सेवायें प्रदान करते है। सामान्यतः इस शब्द का अर्थ प्रायः कस्बे या नगर से लगाया जाता है, किन्तु केन्द्रस्थल केवल नगरीय केन्द्र ही नहीं होते अपितु ग्रामीण बस्तियां भी जो अपने क्षेत्र को सेवाएं प्रदान करती है। संभवतः स्थाई ग्रामीण बाजार सेवा केन्द्र कस्बे एवं नगर आदि सभी जिनमें उनके सम्पूरक क्षेत्र में सेवा प्रदान करने की क्षमता हो, केन्द्रस्थल की परिभाषा की परिधि में आते हैं।

केन्द्रस्थल तंत्र– यदि किसी क्षेत्र विशेष में विद्यमान कुछ तत्वों में परस्पर अंतर्क्रिया के कारण संबधता परिलक्षित हो तो उन तत्वों के जाल या गुम्फन को तंत्र कहते हैं। एक सामान्य तंत्र की एक सामान्य तंत्र की निम्न प्रमुख विशेषताएं होती हैं–

1. तंत्र के अन्तर्गत कई तत्व एक साथ सूत्रबद्ध होते हैं।
2. इसमें ऊर्जा प्रवाह होता है जिससे कार्यशीलता बनी रहती है।
3. ऊर्जा प्रवाह के विस्तार एवं संकुचन के अनुसार तंत्र विकसित एवं संकुचित होता है।

क्रिस्टालर ने 1933 ई0 में दक्षिणी जर्मनी के केन्द्रस्थलों के विषेष संदर्भ में अपने सिद्धांत का प्रतिपादन किया, उन्होंने परिकल्पना में बताया है कि एक समांग क्षेत्र में केन्द्रस्थलों का वितरण परस्पर बराबर दूरी पर होगा एवं उनका सेवा क्षेत्र षष्ठभुजाकार होगा। षष्ठभुज ही एक ऐसा आदर्श ज्यामितीय आकारिकी है जिसमें एक स्तर के केन्द्रस्थलों के समूह के चतुर्दिक सम्पूरक क्षेत्रों न तो कोई भाग असेवित रह जाता है और न कोई उभयनिष्ठ ही होता है। क्रिस्टालर ने केन्द्रस्थल सिद्धांत में विभिन्न दशाओं हेतु इन सिद्धांतो की व्याख्या प्रस्तुत की है।

(अ) विपणन सिद्धांत (K-3)–यह सिद्धांत उस दशा में उपयुक्त है, जब वस्तुएं एवं सेवाओं का वितरण प्रधान हो।

BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed Open Access Journal
issn : 3048-6971
Vol. 2, Issue 4, October-December 2024
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/

(ब) यातायात सिद्धांत (K-4)–यातायात जाल के सक्रिय होने पर यह सिद्धांत लागू होता है। इसके केन्द्रस्थल अग्रिम निम्नतर श्रेणी के षष्ठभुज के शीर्ष विन्दुओं पर न होकर उसकी प्रत्येक भुजा को दो भागों में बांटने वाले बिन्दुओं पर स्थित होते हैं जिसमें प्रत्येक केन्द्र अपने समीप के दो बड़े केन्द्रों से सेवायें प्राप्त करता है। इसमें केन्द्रों एवं उसके प्रदेशों की संख्या चार गुना अनुपात में होती है।

(स) प्रशासनिक सिद्धांत (K-7)–आर्थिक ढंग से विलग सिद्धांत उस दशा में लागू होता है, जब प्रशानिक तंत्र प्रधान होते हैं। ऐसे प्रदेश में अग्रिम निम्नतर श्रेणी के 6 केन्द्र प्रदेश के भीतर षष्ठकोणीय ढंग से व्यवस्थित होते है कि सभी 6 केन्द्र उस प्रदेश में एक बड़े केन्द्र से जुड़ जाते हैं। इस सिद्धांत पर विकसित केन्द्रस्थल तंत्र में मूल्य 7 होता है।

लाश ने 1954 में केन्द्रीय स्थानों की स्थिति तथा उनके बाजार क्षेत्र के बारे में एक नये सिद्धान्त कर प्रतिपादन किया है। इन्होंने क्रिस्ट्रालर की भांति षष्टकोणिय इकाईयों का प्रयोग किया एवं उनकी इकाईयों में परवर्ती ज्ञ पदानुक्रम को माना जिसमें ज्ञ का मान स्थिर न रहकर घटता–बढ़ता रहता है। बेरी ने 1958 में केन्द्रस्थल सिद्धान्त को केन्द्रीय स्थानों की पुंजों की स्थानिक दूरी व उनकी क्रिया, अवस्थिति, आकार एवं प्रकृति से सम्बन्धित माना है। सिंह ने 1979 में केन्द्रस्थल सिद्धान्त केन्द्रीय स्थानों की अवस्थिति, स्थानीय दूरी, स्तरक्रम एवं उनके कार्यों से सम्बन्धित माना है, जो अपने चतुर्दिक फैले सीमावर्ती क्षेत्र को सेवाएं प्रदान करने वाले होते हैं।

विकास ध्रुव– पेराक्स ने 1955 में विकास ध्रुव सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। इन्होंने विकास ध्रुव को नगरीय या औद्योगिक केन्द्र के रूप माना है। पेराक्स क्षेत्रीय विकास में एक विकासात्मक उद्योग की स्थापना को विकास ध्रुव के अस्तित्व के लिए आवष्यक मानते हैं। जब किसी केन्द्र पर एक महत्वपूर्ण उद्योग स्थापित होने लगता है, तो उस उद्योग से संबंधित दूसरे अन्य उद्योग भी स्थापित होने लगते हैं। यही प्रक्रिया केन्द्र को एक विकास ध्रुव के रूप में स्थापित करती है। कालान्तर में संचयी अर्थतन्त्र को प्रोत्साहित करने वाले कारकों का वहां स्वतः केन्द्रीकरण होने लगता है। इससे विकास ध्रुव आर्थिक विकास का केन्द्र हो जाता है।

वोदविले ने 1966 में विकास ध्रुव की संकल्पना को संशोधित करके इसे आर्थिक एवं भौगोलिक क्षेत्र से सम्बन्धित माना है। उन्होंने बताया है कि विकास की प्रक्रिया ऐसे नगर में होती है, जो औद्योगिक नगर होते हैं। ऐसे विकास ध्रुव श्रृंखलाबद्धता द्वारा नगर के प्रभाव क्षेत्र को आर्थिक गति प्रदान करते हैं। बोदविले ने वृद्धि ध्रुव को विकास ध्रुव माना है। विकास ध्रुव ऐसा प्रादेशिक विकास केन्द्र है, जिससे किसी नगरीय क्षेत्र में विस्तारवादी उद्योग–धन्धों का क्रम स्थापित होता है। वे उद्योग–धन्धे अपने क्षेत्र में अन्य सम्बधित उद्योगों का विकास करते हैं, जिससे उस क्षेत्र में आर्थिक विकास का आधारीय ढांचा निर्मित

होता है। बोदविले ने पेराक्स के सिद्धान्तों को आधार मानते हुए क्रियात्मक एवं स्थानीय ध्रुवों के बीच की दूरी को कम करने का प्रयास किया है।

सेवा केन्द्रों की संकल्पना–सेवा केन्द्र ऐसे केन्द्र होते हैं, जो सेवाएं एवं सुविधाएं एक निश्चित क्षेत्र के लोगों को प्रदान करते हैं। सेवा केन्द्र अपने क्षेत्र के केन्द्र में स्थित होने के कारण परिवहन मार्गो द्वारा जुड़े होते हैं तथा प्राथमिक रूप से समीपवर्ती क्षेत्रों की सेवा करने के लिए जन्म लेते हैं। इसलिए इन सेवा केन्द्रों को ग्रामीण सेवा केन्द्र भी कहा जाता है, जो ग्रामीण क्षेत्रों की सेवाएं एवं सुविधाएं प्रदान करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं एवं उसके बदले में अनेक प्राथमिक उत्पाद अपने निवासियों के उपभोग व दूरवर्ती क्षेत्रों को भेजने के लिए प्राप्त करते हैं। यह सेवा केन्द्र इन प्राथमिक उत्पादों को तैयार माल में बदल कर अन्य दूरस्थ स्थानों पर भेजते हैं। सेवा केन्द्र अपने समीपवर्ती तथा कितनी दूर तक की क्षेत्र पर अपना प्रभाव डालता है। यह उसके कार्यिक स्तर व आकार पर निर्भर करता है। यदि सेवा केन्द्र छोटा है तो वह कम सुविधाएं रखता है एवं उसका क्षेत्र भी कम विस्तृत होगा। वह अनेक उच्च सेवाओं के लिए अपने से बड़े सेवा केन्द्रों पर निर्भर होगा। सेवा केन्द्र अपने पदानुक्रमिक आकार के अनुसार ही ग्रामीण क्षेत्रों में सुविधाओं एवं सेवाओं को प्रदान करके ग्रामीण विकास का आधारीय ढ़ाचा तैयार करते हैं।

जायसवाल (1968) के अनुसार सेवा केन्द्र ऐसे केन्द्रीय स्थान के रूप में होते हैं, जो अपने सीमावर्ती क्षेत्र के लिए व्यापारिक एवं सामाजिक केन्द्र के रूप में कार्य करते हैं। सेवा केन्द्र अपनी केन्द्रीय स्थिति में होने के कारण ही केन्द्रीय कार्यों को सम्पन्न करते हैं तथा अपने क्षेत्र की जनसंख्या की सेवा करते हैं एवं उसके सहारे जीते हैं और बदले में उससे अनेक वस्तुएं आदि प्राप्त करते हैं।

सिंह(1969) के अनुसार सेवा केन्द्र ऐसे केन्द्रीय स्थान होते हैं जो स्थायी मानव प्रतिष्ठानों के रूप में परिभाषित किये जाते है, जहां पर सेवाओं एवं समाजिक–आर्थिक आवश्यकताओं का विनिमय होता है। यह स्थानीय जनसंख्या के साथ–साथ प्रदेश की जनसंख्या की भी सेवा करते हैं। यह प्रदेश सेवा केन्द्र के चारों ओर फैला होता है।

सेवा केन्द्र का तात्पर्य ऐसे केन्द्र से हैं जो ग्रामीण अधिवासों को विभिन्न प्रकार की सेवाएं प्रदान करते हैं लेकिन अधिवासीय वितरण तंत्र में सभी मानव अधिवास सेवा केन्द्र नहीं होते हैं। बल्कि विभिन्न भौतिक सामाजिक– आर्थिक एवं धार्मिक कारणों से कुछ अधिवासों की स्थिति केन्द्रीय हो जाती है। वहां विभिन्न कारणों से क्षेत्रीय जनसंख्या का समूहन होने लगता है। परिणामस्वरूप ऐसे केन्द्रीय अधिवासों पर सेवाओं एवं कार्यों का केन्द्रीयकरण होने से स्थानीय जनसंख्या उनक कार्यों एवं सेवाओं का लाभ उठाने लगती है। परिवहन साधनों के विकसित होने पर इन केन्द्रीय अधिवासों के क्षेत्र में क्षैतिज संपर्क एवं वाहय क्षेत्रों से उर्ध्वाधर सम्पर्क बढ़ने लगता है।

कालान्तर में इसी प्रक्रिया से ये केन्द्र एक वितरण तंत्र के अंग बन जाते है, जिससे क्षेत्र में इस प्रकार के केन्द्रों का पदानुक्रम निर्मित हो जाता है, जिसमें छोटे केन्द्र बड़े केन्द्रों पर निर्भर हो जाते हैं (यादव, 2013)।

सेवा केन्द्र, केन्द्रस्थल एवं विकास केन्द्र का समन्वयन–

भौगोलिक क्षेत्र में विशिष्ट अवस्थिति वाले केन्द्र ही ग्रामीण सेवा केन्द्र, केन्द्रस्थल अथवा विकास केन्द्र बनते हैं लेकिन तीनो में कार्यों की प्रकृति को लेकर अन्तर पाया जाता है। विशेष रूप से पाश्चात्य देशों में इनकी संकल्पना कुछ अलग हटकर है। वहां के सन्दर्भ में सेवा केन्द्र एवं केन्द्रस्थल तृतीयक कार्यो के केन्द्र हैं, जबकि विकास केन्द्र द्वितीयक या औद्योगिक केन्द्र के रूप में होते हैं। अर्थात् सेवा केन्द्र एवं केन्द्रस्थल क्षेत्र में सेवाओं की आपूर्ति करते हैं जबकि विकास केन्द्र विकासात्मक कार्यो का केन्द्र होता है। इस तरह सेवा केन्द्र, केन्द्रस्थल एवं विकास केन्द्र में अन्तर स्पष्ट होता है। भारतीय संदर्भ में यह अन्तर स्पष्ट नहीं है। सेवा केन्द्र एवं केन्द्रस्थल दोनों ही वितरण श्रृंखला के अंग होते हैं। सेवा केन्द्र उसी श्रृंखला का न्यूनतम स्तर का केन्द्र होता है जबकि केन्द्रस्थल क्रमशः उच्च स्तर का केन्द्र होता है। इसी तरह विकास केन्द्र भी केन्द्रस्थल है जो विकास कार्यो के साथ–साथ केन्द्रीय सेवा कार्यों को सम्पादित करता है। इस तंत्र में निम्न पदानुक्रम पाया जाता है– यपद्ब स्थानीय स्तर पर सेवा केन्द्र, उप क्षेत्रीय स्तर पर विकास बिन्दु, क्षेत्रीय स्तर पर विकास केन्द्र, यपअद्ब राष्ट्रीय स्तर पर विकास ध्रुव है। मिश्रा 1983 के अनुसार सेवा केन्द्र विकास केन्द्र से भिन्न होगा। सेवा केन्द्र केवल सेवा या वितरण का कार्य ही करेगा, जो विभिन्न प्रकार के सामाजिक–आर्थिक नवाचारों के प्रसार का केन्द्र होगा। विकास बिन्दु वितरण या सेवा कार्यो के साथ–साथ तृतीयक कार्य जो स्थानीय संसाधनो पर आधारित होंगे उनका केन्द्र होगा। इसी तरह उच्च स्तर के विकास केन्द्र मुख्यतया विकासात्मक कार्यों को करते हुये सेवा एवं वितरण कार्यों को भी सम्पन्न करेंगे।

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों के संन्दर्भ में सेवा केन्द्र अथवा केन्द्रस्थल, विकास केन्द्र के रूप में नहीं होते हुए भी विकासात्मक कार्यों को सम्पन्न करते हैं। विकास केन्द्र सेवा कार्यो को करते हुए भी अन्तर्क्रियात्मक सम्बन्धों के कारण सेवा केन्द्र आर्थिक गतिविधियों के केन्द्र बन जाते हैं। ऐसे आर्थिक कार्य स्थानीय संसाधनों पर आधारित रहते हैं। इस तरह से वे वृद्धिजनक केन्द्र के रूप में कार्य करने लगते हैं। विकास केन्द्रों का पदानुक्रमिक स्वरूप, राष्ट्रीय स्तर विकास ध्रुव, क्षेत्रीय स्तर विकास केन्द्र, स्थानीय स्तर सेवा केन्द्र और ग्रामीण स्तर केन्द्रीय ग्राम के रूप में होता है। इस प्रकार सेवा केन्द्र सेवा सम्बन्धी कार्यों के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के सामाजिक–आर्थिक नवाचारों का प्रसार समीपवर्ती अधिवासों को करते हैं जिससे ग्रामीण उत्पादन संरचना में परिवर्तन होता है। परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्र का विकास भी संभव

BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed Open Access Journal
issn : 3048-6971
Vol. 2, Issue 4, October-December 2024
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/

होता है साथ ही नवाचारों का प्रसार अधोमुखी प्रक्रिया द्वारा ही संभव होता है। भारतीय संदर्भ में सेवा केन्द्र अधोमुखी प्रक्रिया द्वारा नवाचारों का प्रसार करते हैं जहां तक सेवा केन्द्रों द्वारा विकास केन्द्रों की भांति आर्थिक विकास प्रक्रिया में रोजगार का प्रश्न है तो ग्रामीण परिवेश में विभिन्न पदानुक्रम वर्ग में अपेक्षाकृत बड़े सेवा केन्द्र, विकास केन्द्रों की भांति ही रोजगार में वृद्धि करते हैं साथ ही यह वृद्धि तीन तरह से हो सकती है।

1. प्रत्यक्ष रोजगार—यदि सेवा केन्द्र पर कोई भी उद्योग या अन्य अवस्थापनात्मक कार्य विकसित है तो उस केन्द्र पर कुछ लोग को प्रत्यक्ष रोजगार उपलब्ध हो जाता है।
2. अप्रत्यक्ष रोजगार— विकास केन्द्रों की भांति ही सेवा केन्द्रों पर भी प्रत्यक्ष रोजगार में लगे लोगों के सेवा हेतु परिवहन एवं अन्य वस्तुओं के वितरण से अप्रत्यक्ष रोजगार के अवसर प्राप्त हो जाते हैं।
3. अभिप्रेरक रोजगार—इस प्रक्रिया में ग्रामीण क्षेत्र के लोग विभिन्न कार्य करने वाले व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उत्पादन तंत्र में परिवर्तन करके लाभ प्राप्त करते हैं। स्पष्ट है कि सेवा केन्द्र ऐसे स्थान होते हैं जो स्थायी मानव प्रतिष्ठानों के रूप में कार्य करते हैं। वहां पर मानव सेवाओं एवं सामाजिक आवश्यकताओं का विनिमय होता है तथा स्थानीय जनसंख्या के साथ—साथ अपने प्रदेश की जनसंख्या का सेवा करते हैं।

ग्रामीण विकास की संकल्पना—

ग्रामीण विकास की अवधारणा के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों के सर्वोत्तम उपयोग द्वारा ग्रामीण जीवन की गुणवत्ता में सुधार का समावेश किया जाता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ग्रामीण क्षेत्रों मे निवास करने वाले निम्न आय वर्ग के लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाकर उनके विकास के क्रम को आत्मपोषित बनाने का प्रयास किया जाता है। स्पष्ट है कि ग्रामीण विकास कार्यक्रम विशेषकर निर्धन ग्रामवासियों के सामाजिक— आर्थिक जीवन को उन्नत बनाने के लिए बनायी गयी है, (यादव, 2008)।

ग्रामीण विकास का तात्पर्य ग्रामीण परिवेश के रुपान्तरण से है। इसमें सामाजिक, राजनैतिक संस्थाओं, अवस्थापनात्मक तत्वों एवं उत्पादन प्रक्रिया तथा ग्रामीण जनसंख्या के मध्य समन्वय स्थापित करके उनके जीवन स्तर में मात्रात्मक एवं गुणात्मक परिवर्तन लाया जा सके। वास्तव में ग्रामीण विकास की प्रक्रिया एक सतत् क्रियाशील प्रक्रिया है। निर्धनता निवारण के बाद भी इसकी गति अवरूद्ध नहीं होती है बल्कि वहीं से प्रारम्भ होती है। किसी क्षेत्र विशेष में ग्रामीण विकास की प्रक्रिया बहुत जटिल होती है जिसमें ग्रामीण सामाजिक—आर्थिक और संस्थागत तंत्र रुपान्तरित होता है। इस प्रक्रिया में कृषि आधारित

BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed Open Access Journal
issn : 3048-6971
Vol. 2, Issue 4, October-December 2024
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/

औद्योगिक तंत्र का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। ऐसे औद्योगिक केन्द्र ग्रामीण क्षेत्रों में अर्थ तंत्र का परिचालन करते है। इसके साथ ही विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के भी केन्द्र बन जाते हैं जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रुप में ग्रामीण विकास को प्रोत्साहित करते हैं, (मिश्रा,1978)।

ग्रामीण विकास वास्तव में सम्पूर्ण सामाजिक–आर्थिक विकास का एक अंग है। इसमें क्षेत्र विशेष के सन्दर्भ में ग्रामीण भूदृश्य के रुपान्तरण पर बल दिया जाता है एक सीमा तक ग्रामीण विकास को समन्वित ग्रामीण विकास का पर्याय माना जा सकता है। ग्रामीण विकास को किसी नगरीय विकास के संदर्भ में अलग नहीं किया जा सकता है। विकास प्रक्रिया किसी भी क्षेत्र में समन्वित रुप से घटित होती है जिसमें ग्रामीण एवं नगरीय दोनों क्षेत्रों का विकास होता है (आर्य, 1999)।

ग्रामीण क्षेत्रों में विविध सेवाओं की उपलब्धता सामाजिक परिवर्तन एवं अन्य अवस्थापनात्मक तत्वों के अध्ययन के साथ ही विकासोन्मुख राष्ट्रों में उपलब्ध सेवाओं में अभिवृद्धि हेतु नियोजन प्रयास ग्रामीण विकास का प्रमुख लक्ष्य होता है। ग्रामीण विकास की संकल्पना कृषि की उत्पादकता में वृद्धि के साथ ही भूविन्यासगत ग्रामीण तंत्र के सर्वागीण विकास से संबंधित है। ग्रामीण जनसंख्या की मूलभूत आवष्यकताओं की पूर्ति के साथ ही स्वास्थ्य, शिक्षा, संस्कृति आदि का प्राविधान एवं विभिन्न सामाजिक वर्गो के विकास के समान अवसर उपलब्ध कराना ग्रामीण विकास के प्रमुख लक्ष्य होते हैं (यादव, 2000)।

कृषि विकास का मुख्य उद्देश्य सामान्यतया कृषि उत्पादन में वृद्धि करना है, जबकि ग्रामीण विकास का प्रमुख उद्देष्य ग्रामीण जनसंख्या जिसमें निर्धन कृषक और भूमिहीन कृषि मजदूरों और अन्य भौतिक और सामाजिक कल्याण को समृद्ध करना, उत्पादकता को उपर उठाना तथा भोजन प्रदान करने के साथ–साथ मौलिक सेवाओं यथा स्वास्थ्य, शिक्षा इत्यादि को उपलब्ध कराया जाता है। इससे प्रत्यक्षतः ग्रामीण गरीबों का सामाजिक व आर्थिक जीवन समृद्ध होता है तथा उनके जीवन में गुणात्मक सुधार होता है (यादव, 2013)।

ग्रामीण विकास का अर्थ ग्रामीण संरचना में गुणात्मक एवं मात्रात्मक परिवर्तन से है, जिससे बढ़ती हुई जनसंख्या की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। गुणात्मक एवं मात्रात्मक परिवर्तन की प्रक्रिया में क्षेत्रीय संसाधनों के उपयोग का इस तरह प्रारूप निश्चित किया जाता है, जिससे संसाधनों के उपयोग का लाभ समाज के न्यूनतम स्तर तक पहुंच सके और स्थानीय जनसंख्या की सहभागिता विकास प्रक्रिया में निश्चित हो सके। ग्रामीण विकास जिनके लिए प्रस्तावित किया गया है, वे लोग ही स्थानीय संसाधनों के बारे में और वहां की सामाजिक– आर्थिक परिस्थितियों के बारे में जागरूक होते हैं तथा वे अपनी प्राथमिकता को स्वयं जानते है। विकास प्रक्रिया में यदि स्थानीय जनसंख्या को सम्मिलित किया जाये तो विकास के सार्थक परिणाम सामने आ सकते है। इस सन्दर्भ में ग्रामीण विकास स्थानीय स्तर पर उपलब्ध

संसाधन जनता की आवश्यकताओं और स्थानीय पर्यावरण के सम्बन्ध में ही अधिक उपयुक्त हो सकता है (पाठक, 1997)।

स्पष्ट है कि ग्रामीण विकास एक बहुआयामी एवं बहुउद्देशीय संकल्पना है, जिसकी सहायता से क्षेत्र में वर्तमान विकास स्तर के अभिज्ञान के बाद स्थानीय संसाधनों की संभाव्यता तथा सामाजिक सुविधाओं का उचित स्थान निर्धारण करके समाज के निर्बल वर्गों के उत्थान हेतु विविध कार्यक्रम लागू एवं स्थानीय लोगों का सक्रिय सहयोग प्राप्त कर समन्वित नियोजन प्रक्रिया में सम्यक विकास हेतु प्रयास किया जाता है। ग्रामीण विकास का उद्देश्य सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक, राजनैतिक आदि क्रियाओं एवं अवस्थापनात्मक तत्वों को समाविष्ट कर योजनाओं को क्रियान्वित किया जाय जिससे इन योजनाओं का लाभ ग्रामीणवासियों को मिल सके, यही ग्रामीण विकास का लक्ष्य है।

समन्वित ग्रामीण विकास की अवधारणा–

भारत में सामुदायिक विकास कार्यक्रम के माध्यम से कार्यात्मक समन्वय एवं समन्वित सेवा प्रतिरूप को प्राप्त करने के लिए सामुदायिक विकास खण्डों की स्थापना 1952 में की गयी, जिसमें सरकार द्वारा विभिन्न सेवाओं के विषेषज्ञों, स्वास्थ्य शिक्षा, कृषि उद्योग आदि की नियुक्ति विकास खण्ड स्तर पर इस उद्देष्य से की गयी थी। इन सेवाओं के समन्वय से ग्रामीण क्षेत्रों का समन्वित विकास होगा, लेकिन अनेक कारणों से ऐसा संभव नही हो सका, जिसका प्रमुख कारण स्थान की प्रकृति के अनुरूप कार्यात्मक समन्वय का आभाव रहा है। परिणामस्वरूप यह विषय समन्वित ग्रामीण क्षेत्रीय विकास हेतु जिज्ञासा एवं चिन्तन का महत्वपूर्ण विषय बन गया है। विभिन्न सामाजिक क्रियाओ का अर्न्तसम्बन्ध उनकी अवस्थिति पर निर्भर करता है। यदि इन क्रियाओं में स्थानिक अन्तर पाया जाता है तो इन क्रियाओं के स्थान में एक निश्चित वितरण प्रतिरूप प्रकट होता है। किसी एक कार्य की वास्तविक स्थिति का दूसरे कार्यों से अर्न्तसम्बन्ध विविध कारणों की देन होता है। कुछ महत्वपूर्ण कार्यों की क्षेत्र के सामान्य विकास में निरन्तर मांग होती है। अतः उन विशिष्ट कार्यो को करने हेतु जनसंख्या की गतिशीलता समय एवं दूरी लोगों की आय का स्तर उन कार्यों को उपयुक्त करने हेतु व्यय क्षमता का आकलन करने के उपरान्त उस क्षेत्र के कार्यों को उपयुक्त स्थलों पर स्थापित करना समन्वित क्षेत्रीय ग्रामीण विकास का परम् लक्ष्य है।

सेन(1971) के अनुसार समन्वित ग्रामीण विकास की अवधारणा प्रदेश के सन्तुलित विकास हेतु सामाजिक एवं आर्थिक सुविधाओं के धरातल पर उनकी उपयुक्त अवस्थिति पर निर्भर करती है। प्रत्येक ग्रामीण अधिवासों में सभी सामाजिक–आर्थिक सुविधाओं का विकास करना असम्भव है। मानव अधिवासों में सेवाओं की मात्रा तथा उनकी विषेषताएं सेवा क्षमता के आधार पर उनकी आकारिकी पायी जाती है। इसलिए विभिन्न प्रकार के कार्यों को उपर्युक्त स्थल पर ही स्थापित किया जाना चाहिए। स्थलों के चयन

में किसी भी प्रकार का पक्षपात पूर्ण विभेद नहीं होना चाहिए। उच्च स्तर के अधिवासों का अपना विस्तृत प्रभाव क्षेत्र होता है, जिनकी परिधि में अन्य छोटे–छोटे अधिवासों के प्रभाव क्षेत्र विकसित होते हैं। किसी विशिष्ट कार्य का किसी विशिष्ट अधिवास में स्थापित करने का अर्थ यह नहीं होता है कि वह कार्य केवल उसी केन्द्र के लिए स्थापित किया गया है, बल्कि उस अधिवास की जनसंख्या के साथ–साथ उसे अपने प्रभाव क्षेत्र के मध्य गत्यात्मकता को सघनता प्रदान करने से ही उस सेवा का लाभ अधिवास सहित उसके प्रभाव क्षेत्र को प्राप्त हो सकता है। चयनात्मक एवं उपयुक्त अवस्थिति की विचारधारा का सर्वाधिक महत्व हमारी वर्तमान आर्थिक दशाओं से है। हमारे पास इतने पर्याप्त संसाधान नहीं है कि हम सभी सुविधाओं एवं सभी विकासीय योजनाओं को सभी अधिवासों मे सुलभ करा सके। हम अपने सीमित साधनों से त्वरित विकास करते हुए क्षेत्र की जनसंख्या को लाभ पहुंचा सके।

शर्मा एवं मल्होत्रा (1977) के अनुसार समन्वित ग्रामीण विकास ग्रामीण परिवेश में गुणात्मक परिवर्तन हेतु नियोजन एवं क्रियान्वयन की एक संकल्पना है, जो ग्रामीणवासिओं के कल्याण एवं सामाजिक एकीकरण की एक प्रक्रिया है, जिसे प्राकृतिक, आर्थिक, संस्थागत एवं प्राविधिकी अन्तर्सम्बन्धों एवं उनके भावी परिवर्तनों को संयोजित कर प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार अत्यधिक उत्पादन अधिकतम रोजगार एवं आय के अपेक्षाकृत समान वितरण के साथ ही साथ निर्बल वर्ग की उत्पादन प्रक्रिया में अधिकाधिक सहभागिता एवं न्याय संगत वितरण का प्रयास ही समन्वित ग्रामीण का उद्देश्य है। भौगोलिक रूप में ग्रामीण विकास के मॉडल प्रस्तुत किये गये हैं। पश्चिमी देशों के विकास प्रक्रिया में केन्द्र एवं विकास केन्द्र मांडल को अपनाया है। परन्तु भारतीय परिवेष में यह मांडल वांछित सफलता नहीं प्राप्त कर सके बल्कि केन्द्रीयकृत एवं असंतुलित विकास प्रारम्भ हो गयी। जिसके कारण केन्द्र तो विकासित होते गये परन्तु ग्रामीण क्षेत्र उपेक्षित होने लगे। अतः भारतीय परिवेश में विभिन्न भूगोलवेत्ताओं एवं नियोजकों ने समन्वित ग्रामीण विकास के क्षेत्र में विकेन्द्रीयकृत विकास मांडल को अपनाये जाने पर विशेष बल दिया, (मिश्रा एवं सुन्दरम् 1980)।

राय एवं पाटिल ने 1977 में समन्वित ग्रामीण विकास को बहुस्तरीय, बहुआयामी बहुखण्डीय एवं बहुवर्गीय संकल्पना माना है। बहुवर्गीय संकल्पना के रूप में ग्रामीण विकास विकेन्द्रीकरण से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत ग्रामीण विकास के विभिन्न भूवैन्यासिक पदानुक्रम, सेवा केन्द्र, विकासखण्ड, तहसील एवं जनपद आदि हैं। इस प्रकार बहुखण्डीय संकल्पना के अन्तर्गत ग्रामीण आर्थिकी के विभिन्न प्रखण्ड कृषि, उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, अवस्थापना आदि का विकास सम्मिलित है। बहुवर्गीय संकल्पना के रूप में इसके अन्तर्गत ग्रामीण जनसंख्या के निम्न आय के विभिन्न वर्गो एवं उप वर्गो जैसे भूमिहीन कृषि मजदूर, लघु एवं सीमान्त कृषक, अनुसूचित जाति एवं जनजाति आदि का सामाजिक–आर्थिक विकास सम्मिलित है। समन्वित ग्रामीण विकास सम्पूर्ण क्षेत्र का समाकलित विकास है। समन्वित ग्रामीण विकास

के अन्तर्गत स्थानीय संसाधनों, भौतिक, जैविक, मानवीय आदि के विकास एंव आवश्यकतानुसार उनके संरक्षण पर बल दिया जाना चाहिए तथा सामाजिक–आर्थिक एवं अवस्थापनात्मक सेवाओं तथा सुविधाओं की स्थापना करके ग्रामीण क्षेत्र का सर्वांगीण विकास किया जाना चाहिए।

अरोरा (1979) के अनुसार समन्वित ग्रामीण विकास का अर्थ स्थानीय संसाधनों का उपयोग करके ग्रामीण अर्थव्यवस्था का बहुमुखी विकास करना है। विकास का कार्य स्थानीय नेतृत्व, प्रेरणा तथा आर्थिक में अन्तर्निहित शक्ति के आधार पर किया जाना चाहिए एवं सरकार को इसमें प्रोत्साहन की भूमिका निभानी चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बहुस्तरीय नियोजन प्रक्रिया अपनायी जानी चाहिए। इस प्रक्रिया में समाज के अधिकाधिक लोगों के शक्ति उपयोग हेतु ग्रामीण समाज की संरचना, भूमि–मनुष्य सम्बन्ध विभिन्न वर्गों के मध्य सामाजिक अन्तर्सम्बध संसाधनों का न्यायोचित प्रवाह एवं विभिन्न सामाजिक आर्थिक समूहों एवं व्यक्तियों के द्वारा सम्पादित योगदानों तथा उनके मध्य लाभ के समान विवतरण का ज्ञान आवश्यक है। इन तथ्यों को ध्यान में रखकर ही विभिन्न योजनाओं को बनाकर ही उनका क्रियान्वयन किया जाना चाहिए। समाकलित प्रादेशिक विकास प्रक्रिया क्षेत्र के संतुलित विकास से सम्बन्धित होती है तथा इसमें विविध प्रकार के समन्वयन पर विशेष बल जाता है इसका उद्देष्य दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य में क्षेत्र के भौतिक परिवेश के अन्तर्गत सामाजिक–आर्थिक कार्यों के निमित्त के उपयुक्त अवस्थिति का निर्धारण करके ग्रामीणों के उत्तम जीवन स्तर हेतु विविध सेवायें एवं सुविधाएं सुलभ कराना है। इस प्रकार ग्रामीण विकास प्रकिया विविध प्रकार के समन्वय पर आधारित है जिसका अन्तिम उदेद्श्य ग्रामीण अंचल में निवास करने वाले लोगों को प्रर्याप्त रोजगार एवं जीवन–यापन के अवसर प्रदान करना है।

श्रीवास्तव(1977) ने ग्रामीण विकास के आधारभूत समुदाय मांडल की विवेचना ग्रामीण भारत के विशेष संदर्भ में किया है। इस मांडल के अनुसार प्राचीन परम्परागत देशों के ग्रामों का अपनी आवश्यकता ही पूर्ति के लिए समूहन होता है। इस तरह ग्रामीण परम्परागत क्षेत्र में अर्थतन्त्र कार्यरत होता है, विकास के उपादान यदि देषज भूवैन्यासिक संगठन की पहचान कर सकते हैं, तो समन्वित ग्रामीण विकास की प्रक्रिया तीव्र गति से कार्य करते रहते हैं।

स्पष्ट है कि समन्वित ग्रामीण विकास सें ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, बिजली तथा आवास जैसी मूलभूत सुविधाओं को विकसित करना, ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त गरीबी को दूर करने के लिए कृषि एवं कुटीर उद्योगों का विकास करना तथा रोजगार के अवसर सृजित करना तथा देश के प्रशासन में ग्रामीणों की भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु उनमें चेतना एवं जागरूकता का संचार करना। इस प्रकार की व्यवस्था से ग्रामीण निवासियों का सामाजिक–आर्थिक व सांस्कृतिक विकास संभव हैग्रामीण विकास में सेवा केन्द्रों की भूमिका– ग्रामीण विकास में कार्यात्मक समन्वय एवं स्थानिक समन्वय की अवधरणा निहित

है। स्थानिक समन्वय हेतु विविध सामाजिक–आर्थिक सुविधाओं के विकास हेतु उपयुक्त व चयनात्मक स्थलों की अवस्थिति अनिवार्य है। सीमित साधन एवं पूंजी के कारण प्रत्येक मानव अधिवास को सम्पूर्ण सामाजिक–आर्थिक सुविधाओं को सुलभ कराना संभव नहीं है। विविध सामाजिक–आर्थिक सुविधाओं की अवस्थापना हेतु उपयुक्त स्थलों का चयन उनका सेवित क्षेत्र, उन स्थापित होने वाली सुविधाओं का विस्तृत अध्ययन आवश्यक है।

ग्रामीण विकास में सेवा केन्द्र केन्द्रीय भूमिका निभाते है। ग्रामीण क्षेत्रों में इन्हीं के माध्यम से सामाजिक– आर्थिक क्रियाओं को बल मिलता हैं तथा अभिनव ज्ञान–विज्ञान की प्राप्ति और प्रयोग का संचरण होता है। सेवाओं के विकेन्द्रित–केन्द्रीकरण की दृष्टि से इनकी महती उपादेयता है। सेवा केन्द्रों का अभ्युदय स्थानीय एवं क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप होता है और ये अपनी स्थिति के कारण महत्वपूर्ण हो जाते है। इन सेवा केन्द्रों पर क्षेत्रीय एवं स्थानीय आवश्यकतानुसार सेवाओं का विकास होता रहता है। इनके द्वारा ग्रामीण जीवन के विभिन्न कार्यक्रमों का संचालन ग्रामीण आवश्यकताओं के अनुरूप होता है। ये अपने सेवा क्षेत्र में रोजगार के अवसर जीवन की प्रत्याशा में वृद्धि करके नगरीय प्रवास रोकने में सक्षम होते है। अतः सेवा केन्द्र समन्वित ग्रामीण विकास में आर्थिक विकास का ढ़ाचा तैयार कर सम्पूर्ण ग्रामीणों को विकास हेतु प्रोत्साहित करते हैं (सिंह,1981)।

ग्रामीण क्षेत्रों के संतुलित विकास एवं संसाधनों के अनुकूलनतम उपयोग हेतु सामाजिक–आर्थिक क्रियाओं के विकेन्द्रित–केन्द्रीकरण की प्रक्रिया में अधिकतम लाभ स्थलों का चयन किया जाता है। सेवा केन्द्र ग्राम एवं नगर के सामाजिक–आर्थिक दूरी को कम कर ग्रामीण विकास में अपनी भूमिका निभाते हैं। सेवा केन्द्रों का आज प्राथमिक महत्व है, क्योंकि ये अपनी केन्द्रीय स्थिति के कारण क्षेत्रीय जनसंख्या की आवश्यक वस्तुओं एवं सेवाओं की पूर्ति में सहायक होते हैं। इन स्थलों के विकास कार्य हेतु नीति एवं कार्यक्रम का निर्धरण किया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में वितरण के ये केन्द्र ग्रामीण समुदायों के सामाजिक–आर्थिक क्रियाओं के उत्प्रेरक होते हैं। सामान्यतः सेवा केन्द्र अपने चतुर्दिक फैले क्षेत्रों को विभिन्न सामाजिक–आर्थिक सेवायें प्रदान करते हुए उच्च श्रेणी के सेवा केन्द्रों से प्राप्त नव अभिज्ञानों को अपने सेवा क्षेत्रों में प्रसारित करके कृषि, उद्योग एवं वाणिज्य के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाते हैं। ये अपने क्षेत्र में विकास के लिए श्रेयकर वातावरण के साथ ही रोजगार के नये अवसर प्रदान कर नगरोन्मुख प्रवास को रोकने में सक्षम होते हैं। वस्तुतः ये नवीनीकरण के केन्द्र हैं (सिंह, 2007)।

समन्वित ग्रामीण विकास हेतु नियोजन–

ग्रामीण विकास नियोजन एक योजना है जिसके अन्तर्गत क्षेत्र में कृषि विकास, औद्योगिक, अवस्थापनात्मक, सामाजिक विकास आदि हेतु ऊचित व्यवस्था करना जिसका लाभ सम्पूर्ण ग्रामीणों को

मिल सके जिससे उनके जीवन स्तर में वृद्धि, सामाजिक जीवन शैली का विकास करके उनका सर्वांगीण विकास करना ही ग्रामीण विकास नियोजन का प्रमुख लक्ष्य एवं उद्देश्य है। ग्रामीण विकास के उपरोक्त कार्यक्रमों एवं विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत ग्रामीण विकास में जो विसंगतियां उभर कर सामने आयी है उनके निराकरण हेतु ग्रामीण विकास के वैकल्पिक नियोजन की महती आवश्यकता है। ग्रामीण विकास में निम्न प्रखण्डों का निर्धारण किया गया है– कृषि क्षेत्र, ग्रामीण औद्योगिक विकास, सामाजिक–स्वास्थ्य क्षेत्र एवं अवस्थापनात्मक क्षेत्र।

समन्वित ग्रामीण विकास क्षेत्रीय सामाजिक सन्दर्भ में न्यूनतम स्तर तक माना जाता है इसलिए उपर्युक्त चारों प्रखण्डों को क्षेत्रीय और वर्गीय आधार पर प्राथमिकता के आधार पर विकसित किया जाना चाहिए और चारों प्रखण्डों में इन्हीं आधारों पर समन्वय भी होना चाहिए। विभिन्न प्रखण्डों के अनुसार विकास योजनाओं का निर्माण और क्रियान्वयन इस प्रकार किया जाना चाहिए ताकि वे स्थानीय संसाधनों और पर्यावरण के अनुसार विशिष्ट होते हुए भी क्षेत्रीय और जनपदीय स्तर की योजनाओं से समन्वय बनाये रख सके।

कृषि विकास नियोजन–समन्वित ग्रामीण विकास का आधार ही कृषि क्षेत्र है। वर्तमान कृषि विकास प्रतिरूप, असमान जोताकार, सामन्तवादी, कृषि विकास, वर्षा पर ही कृषि की निर्भारता, अपेक्षाकृत बड़े किसानों के संदर्भ में कृषि की विकासात्मक योजनाओं का प्रभाव, भूमिहीन और कृषि मजदूरों तथा सीमान्त कृषकों की बढ़ती संख्या इस प्रखण्ड की मुख्य विषेषताएं है। लघु स्तरीय नियोजन प्रक्रिया के अन्तर्गत इनकों दूर किया जा सकता है। जैसे भूमि सुधार, बंजर और ग्राम समाज की भूमि आवंटन, जल स्रोतों और वनों का आवंटन आदि, अनेक विकासात्मक अवस्थापना तत्वों का विकेन्द्रीकरण आदि को विकसित करके कृषि विकास के लाभ को न्यूनतम स्तर तक पहुंचाया जा सकता है। नियोजन प्रक्रिया क्षेत्रीय और वर्गीय पदानुक्रम की प्राथमिकता के आधार पर विकसित की जानी चाहिए (यादव एवं पाण्डेय, 2005)।

ग्रामीण औद्योगिक विकास नियोजन–ग्रामीण क्षेत्र में उद्योग एवं रोजगार के आभाव के कारण जनसंख्या का नगरों की ओर पलायन जारी है। पलायन रोकने के लिए ग्रामीण संसाधनों पर आधारित उद्योग धंधों का विकास लघुस्तरीय नियोजन का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। इनमें पारिवारिक घरेलू उद्योग, कुटीर उद्योग के क्षेत्र में कृषि पर आधारित औद्योगिक संरचना विकसित की जानी चाहिए। इसके साथ ही विभिन्न पदानुक्रम के औद्योगिक केन्द्रों अथवा सेवा केन्द्रों की श्रृखला निर्मित की जानी चाहिए, जो केन्द्रीय ग्राम अथवा आवर्ती विपणन केन्द्र से प्रारम्भ होकर ऊपर की ओर क्रमशः क्षेत्रीय नगर तक हो सकती है, (पाण्डेय एवं शर्मा, 2004)।

सामाजिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी विकास नियोजन–समन्वित क्षेत्र के अन्तर्गत विभिन्न सामाजिक

और स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं का विकेन्द्रीकरण क्षेत्रीय और पारिवारिक प्राथमिकता के आधार पर किया जाना चाहिए। इससे आवश्यक क्षेत्रों में उपयुक्त लोगों तक इन सुविधाओं का विकास पहले होगा और वे पूर्व विकसित वर्ग या क्षेत्र से बराबरी प्राप्त कर सकेंगे,(वनमाली, 1972)।

अवस्थापनात्मक विकास नियोजन—अवस्थापनात्मक विकास नियोजन समन्वित ग्रामीण अर्थतंत्र का महत्वपूर्ण प्रखण्ड है और इसका विकास विभिन्न पदानुक्रम स्तर पर इस प्रकर किया जाना चाहिए ताकि ये सम्पूर्ण ग्रामीण क्षेत्र से विभिन्न पदानुक्रम वर्ग के सेवा केन्द्रों की श्रृखला से अन्तर्क्रियात्मक सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम हो सकें तथा ग्रामीण क्षेत्र को प्रादेषिक और राष्ट्रीय तंत्र से जोड़ सके। अवस्थापनात्मक तत्व विकास के आधारभूत कारक हैं जिनके बिना विकास अभिप्रेरक अन्य तत्वों के रहते हुए विकास प्रक्रिया सम्भव नहीं है, (वर्मा एवं शाही, 1987)।

स्पष्ट है कि ग्रामीण विकास के विभिन्न कार्यक्रमों का इस प्रकार नियोजन और क्रियान्वयन किया जाना चाहिए ताकि उनमें स्थानीय, प्रखण्डीय और कालिक तथा कार्यिक समन्वय स्थापित हो सके तभी वास्तविक अर्थो में ग्रामीण विकास का कार्यक्रम फलीभूत हो सकेंगे।

साहित्य समीक्षा—भारत में विकास केन्द्र, सेवा केन्द्र, केन्द्रस्थल प्रादेशिक नियोजन तथा ग्रामीण विकास से सम्बन्धित अध्ययन हो रहा है, जिसमें ग्रामीण विकास संस्थान हैदराबाद, विकास संस्थान मैसूर, भारतीय सांख्यिकीय संस्थान की प्रादेशिक नियोजन इकाई नयी दिल्ली प्रयुक्त आर्थिक शोध की राष्ट्रीय परिषद, नई दिल्ली आदि के काम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। विभिन्न विश्वविद्यालयों में देष के सम्यक क्षेत्रीय एवं ग्राामीण विकास की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर केन्द्रस्थल तंत्र, विकास केन्द्र, सेवा केन्द्र, समन्वित ग्रामीण विकास एवं प्रादेशिक नियोजन पर शोध कार्यों को प्रोत्साहित किया जा रहा है।

क्रिस्टालर (1933) के केन्द्रस्थल अध्ययन के पश्चात् अनेक विद्वानों ने केन्द्रस्थलों, सेवा केन्द्रों के पदानुक्रम निर्धारण में केन्द्रीय कार्यों को आधार माना है। ब्रूष ने 1953 में दक्षिणी—पश्चिमी विस्कान्सिन प्रदेश के केन्द्रीय स्थलों की केन्द्रीयता की मापन के लिए उन्हें तीन वर्गों यथा शहर, ग्रामीण एवं झोपड़ी में विभक्त किया है। गुडलुण्ड ने 1956 में स्वीडन के केन्द्रस्थलों की केन्द्रीयता को ज्ञात करने के लिए किस्ट्रालर की ही तरह फुटकर व्यापार में संलग्न जनसंख्या के आधार पर केन्द्रों का पदानुक्रम निर्धारण किया है। केरूथर्स ने 1957 में इग्लैण्ड के सेवा केन्द्रों का पदानुक्रम निर्धारण परिवहन पररिवहन साधनों एवं बस सेवाओं के आधार पर उनके अन्तर्सम्बन्ध का अध्ययन प्रस्तुत किया है। प्रीस्टन (1971) एवं डेसी एवं किंग (1962) ने गणितीय मांडल का प्रयोग केन्द्रस्थलों के पदानुक्रम निर्धारण में किया है। फिलब्रिक (1957) के अनुसार किसी प्रदेश विशेष के प्रत्येक अधिवास समान रूप से महत्वपूर्ण नहीं होते हैं बल्कि उनके क्रियात्मक व्यवहार तथा सेवा क्षमता में मात्रात्मक एवं गुणात्मक विचलन विद्यलन होता है, क्योंकि

BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed Open Access Journal
issn : 3048-6971
Vol. 2, Issue 4, October-December 2024
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/

सम्पूर्ण भौगोलिक प्रदेश में मानवीय क्रियाओं एवं अधिवासों के क्षेत्रीय वितरण की एकरूपता का आभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इसलिए इन्होंने क्षेत्रीय विषमताओं के निवारण के लिए अधिवासों में पाये जाने वाले सेवाओं को आधार मानकर संयुक्त राज्य अमेरिका के केन्द्रीय सेवा स्थानों का अध्ययन प्रस्तुत किया है। यही केन्द्र क्षेत्र के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान करते है, जो क्षेत्र में परिलक्षित होता है। जानसन(1966), थामस (1977), फ्रीमैन (1972), आदि विद्वानों का नाम प्रमुख है, जिन्होंने केन्द्रस्थल तंत्र से सम्बन्धित अध्ययन प्रस्तुत किये हैं।

केन्द्रस्थल से सम्बन्धित अध्ययन द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व पाश्चात्य देषों तक ही सीमित रहा लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भारत में इस तरह का अध्ययन सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनों दृ ष्टिकोण से किया जाने लगा। भारत में कार द्वारा 1962 में कलकत्ता प्रदेश में किया गया। सिंह ने 1966 में मध्य गंगा घाटी के केन्द्रस्थलों के वितरण का अध्ययन किया। बराय ने 1975 में तमिलनाडु के केन्द्रस्थलों का अध्ययन किया। मण्डल ने 1975 में विहार प्रान्त में केन्द्रस्थलों का पदानुक्रम निर्धारित किया। सिंह ने 1980 में सरयूपार मैदान में सेवा केन्द्रों का अध्ययन प्रस्तुत किया, पाठक ने 1983 में समन्वित क्षेत्रीय विकास का एक भौगोलिक अध्ययन प्रस्तुत किया। तिवारी ने 1985 में गंगा–यमुना द्वाव में सेवा केन्द्रों का भूवैन्यासिक संगठन प्रतिरूप ज्ञात किया है। पाण्डेय ने 1987 में समन्वित ग्रामीण विकास में केन्द्रस्थलों की भूमिका को स्पष्ट किया। बुधराज ने 1988 में लघुस्तरीय विकास नियोजन और ग्रामीण विकास केन्द्र की विचाराधारा प्रस्तुत किया है। पाठक ने 1993 में बलिया जनपद के ग्रामीण विकास में सेवा केन्द्रों की भूमिका का अध्ययन प्रस्तुत किया है। हारून ने 1997 में बहराइच जनपद के ग्रामीण सेवा केन्द्रों का अध्ययन किया है। मिश्रा ने 2000 में बैरिया तहसील के सेवा केन्द्रों के नियोजन का अध्ययन किया है। शर्मा ने 2000 में ग्रामीण सेवा केन्द्र एवं लघुस्तरीय नियोजन तहसील सगड़ी, आजमगढ़ का प्रतीक अध्ययन किया। सुनिता ने 2002 में मऊ जनपद के सेवा केन्द्रों का अध्ययन किया है एवं यादव ने 2008 में गाजीपुर जनपद में सेवा केन्द्र एवं समन्वित ग्रामीण विकास का अध्ययन प्रस्तुत किया है। स्पष्ट है कि वर्तमान में सेवा केन्द्र एवं समन्वित ग्रामीण विकास का अध्ययन राष्ट्र एवं क्षेत्र के विकास का आधार है।

बिहार शोध समागम

BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed Open Access Journal
issn : 3048-6971
Vol. 2, Issue 4, October-December 2024
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/

संदर्भ सूची

1. Mishra, R.P. (1983): 'Growth poles and Growth Centres in the Context of India's Urban and Regional Development Problems' in Contribution to Indian Geography: Concept and Approaches, Heritage Publisher, New Delhi, pp.221.246.14
2. Pandey, J.N. (1985) : 'A Strategy for Rural Development in V.K. Srivastava (ed) Commercial Activities and Rural Development in South Asia. Concept Publishing, New Delhi, pp.441-444'
3. Chistaller, W. (1933): Central Place in South Germany'. Translated by C.W. Baskin Prentice Hall Inc Engle wood Cliffls, New Jersey (1966).
4. Losch, A. (1954): Economics of location, Yale University Press, New Haven, P.115
5. Berry, B. J. L. and Garrison, W. L. (1958): 'The functional Base of Central Place Hierarhy and note of the Central Place Theory and Range of Good, Economic Geog. 34, pp. 145-154'.
6. Singh, J. (1979): Central Place of Spatial Organization in Backward Economy, Gorakhpur Region: A Study in Rural Development, U.B.B.P. Gorakhpur'.
7. Peroux, F. (1955): 'Note of Concept of Growth Pole' in David, L. Mache, Robert, (ed) Regional Economic Theory and Practice.
8. Boodevile, J. R. (1966) : 'Problem of Regional Economic Planning. Pt.1, University press, Edinburgh.
9. Jaiaswal, S.N.P. (1968): 'Hierarchical Grading of Service Centre of the Eastern Part of Ganga-Yamuna Doab and Their Regional Planning Urban Geog.In.Dev. Countries, Proceeding of I.G.U. Symposium, Varansi.
10. Singh, O.P. (1969) : 'A Study of Central Place in U.P., B.H.U. Varanasi
11. Yadav, A.K. (2013) :'Ghazipur District (U.P.) in Hierarchicy of Service Centres; Panchatatva, Vol-2 No.-2 pp.31-37
12. Mishra, R, P. (1983): 'Local Level Planning and Development', Sterling Publication New Delhi.
13. यादव, अजीत कुमार (2008): सेवा केन्द्र ,वं समन्वित ग्रामी.ा विकास:जनपद गाजीपुर का क प्रतीक अध्ययन अप्रकाशित शोध प्रबंध दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।

14. Mishra, R, P. (1978): 'Regional Planning and National Development', Vikas Publication New Delhi

15. आर्य, राजेश कुमार (1999): 'मालवा पठार में कृषि आधारित उद्योग ,वं ग्रामीण विकास अप्रकाशित शोध प्रबन्ध गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।

16. यादव, राजेश कुमार (2000): कृषि विविधता ,वं ग्रामीण विकास मनकापुर तहसील जनपद गो.डा का ,क प्रतीक अध्ययन, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।

17. Yadav, A.K. (2013) : 'Agricultural Development Planning : A case Study of Ghazipur District (U.P.), Shabdbraham, Vol.-1, Issuse-2, pp.13-20

18. पाठक, ग.ोश कुमार(1997) :'ग्रामी.ा विकास संकल्पना उद्देश्य ,वं सेवा केन्द्र, उद्योग व्यापार पत्रिका, ख.ड–40, अंक 20, नई दिल्ली।

19. Sen, L.K. (1971): 'Planning Rural Growth Centres for Integrated Area Development A Study in Miralguda Taluka; National Institute of Community Development Hyderabad.

20. Sharma, SK and Malhotra, S.L. (1977): Integrated Rural Development Approaches Strategy and Perspectives Abhinav Publication New Delhi. P.30

21. Mishra R.P. and Sundaram, L.V. (1980): Multi Level Planning and Integrated Rural Development in India New Delhi. P.7

22. Roy and Patil (1977) : Mannual of Block Level Planning,

23. Arora, R.C. (1979): Integrated Rural Development; S.Chand and Company Ltd., New Delhi

24. Srivastava, V.K. (1977): Periodic Market and Rural Development Bahraich District: A Case Study National Geographer Vol. 12, N0.1 P.P. 47-55

25. सिंह, मंगला (1981): जनपद आजमगढ (उ.प्र.) में ग्रामीण अधिष्ठान का रूपान्तरण ,क भौगोलिक अध्ययन, अप्रकाशित शोध प्रबंध काषी हिन्दू विश्वविद्यालय, वारा.ासी।

26. सिंह, प्रियंका (2007) : 'कुशीनगर जनपद में ग्रामीण सेवा केन्द्र ,वं लघु स्तरीय नियोजन' उ.भा.भू. प.अंक 37, संख्या ,क, जून, पृष्ठ संख्या 99. 104।

BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed Open Access Journal
issn : 3048-6971
Vol. 2, Issue 4, October-December 2024
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/

27. यादव, राजेश कुमार, वं पाण्डेय, जगत नाराय.ा (2005): 'ग्रामी.ा विकास हेतु कृषि नियोजन मनकापुर तहसील जनपद गो.डा का ,क प्रतीक अध्ययन', उ.भा.भू.प. अंक 35, संख्या–,क–दो, जून, दिसम्बर पृष्ठ संख्या 1–7 तक।

28. पा.डेय, रविन्द्र कुमार, वं शर्मा, वी.,न. (2004): पूर्वी उत्तर प्रदेष में कृषि आधारित उद्योगों का विकास स्तर, समस्या; ,वं नियोजन उ.भा.भू.प. अंक 33 संख्या ,क जून पृष्ठ संख्या 33–41 तक।

29. Wanmali, S. (1972) : 'Regional Planning for Social Facilities, An Examination of Central Place Concept and Their Application. A Case Study of Eastern Maharastra' N.I.C.D. Hyderabad.

30. वर्मा, शिवशंकर ,वं शाही, सुनील कुमार (1987) अध संरचनात्मक तत्व,वं प्रादेशिक विकास, कफरेन्दा तहसील का प्रतीक अध्ययन, भूविज्ञान, नेशनल ज्योग्राफिकल सोसाइटी आफ इण्डिया, वाराणसी अंक 35, संख्या 1 पृष्ठ संख्या 1–7 तक।

31. Brush, J.E. (1953): The Hierarchy of Central Place in South Western Wisconsin, Geog, Rev 43 ,pp 380-402

32. Goodland, Seven (1956): The Functions and Growth of Bus Traffic with the Sphere of urban Influence, Lund Studies in Geog. B. No. 18.

33. Carruthers, W.I. (1953): The classification of Service Centre in England And Wales, Geographical Journal, 123, pp. 371-385

34. Prestor, R.E. (1971): The structure of Central Place System, Eco. Geog.47.

35. Decey,M.F.(1962): Analysis of Central Place and Point Patterns by Nearest Neighbor Analysis, Lund Studies in Geography Series, B,4.

36. King, L.J.(1962): Central Place theory and the spacing of Town in the United States in M. Makaskil (Ed.) Land and Livelihood, Christ, Newzealand Geographical Society.

37. Philbrick, A.K. (1957): Areal Functional organization in Regional Human Geography, Eco. Geog. 33.

38. 38. Johnson, R.J. (1966): Central Places and the Settlement Pattern, A.A.A.G.56,

39. Thomas, E.N. (1961) :Toward an Expanded Central Place Model, Geographical Rev.51, pp. 400-411.

BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed Open Access Journal
issn : 3048-6971
Vol. 2, Issue 4, October-December 2024
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/

40. Friedman, J. (1972): A Central Place of Polarized Development in Hanlen, N.M. (Ed) Regional Economic Development, pp.86-90.
41. Kar, N.R. (1960): Urban Hierarchy and Central Functions around Calcutta in lower West Bengal and their Significance. Proceeding of the I.G. U. Symposium in Urban Geog. Lund. Sweden.
42. Singh, K.N. (1966): Spatial Pattern of Central Places in the Middle Ganga Valley, N.G.J.I., 12, No. 4.
43. Barai, D. C. (1975) : 'Central Places in Tamilnadu', Unpub. Ph.D. Thesis B.H.U. Varanasi.
44. Mandal, R. B. (1975) : 'Central Place Hierarchy in Bihar Plain, N.G.J.I. Vol. 21.
45. Singh, C.D. (1980) : 'The Study of Service Centres in Saryupar Plain', Unpublished Ph.D. Thesis Gorakhpur University Gorakhpur.
46. Pathak, C.R. (1983) : 'Integrated Area Develpoment', A Geographical Review of India, Vol 35 (3)
47. Tiwari, R.C. (1985) : 'Spatial Organization of Service Centres in Lower Ganga-Yamuna Doab', National Geographer, Allahabad, Vol. 15 No.2, pp 103- 114.
48. Pandey, J.N. (1987) :'Role of Central Place in Integrated Rural Development', I.S.C.A. Kolcatta.
49. Budhraja, J.C. (1988): 'Micro Level Development Planning: Rural Growth Centre Strategy, Commonwealth Publishers, Delhi.
50. पाठक, गणेश कुमार(1993) :'बलिया जनपद (उ.प्र.) के सेवा केन्द्र ,वं ग्रामीण विकास में उनका योगदान' पीच–डी. अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद।
51. हारुन, मोहम्मद (1997) : 'ग्रामीण सेवा केन्द्रों का कार्यिक वर्गीकरण बहराइच जनपद का प्रतीक अध्ययन, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, अंक 33 संख्या 1–2, पृष्ठ संख्या 23–30 ।
52. मिश्रा, ब्रजेश कुमार (2000) : 'तहसील बैरिया, बलिया उ.प्र. में सेवा केन्द्र नियोजन' अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर।
53. Sharma, N.K. (2000) : 'Rural Service Centre and Multi level Planning A case Study Sagari Tahsil Azamgarh', Unpublished Ph.D Thesis Gorakhpur University.